भाग १

भारत में जन स्वास्थ्य व्यवस्था की पुरानी बीमारी

भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान, आधुनिक स्वास्थ्य सेवाएं देने में राज्य की बड़ी भूमिका थी। परंतु ये सुविधाएं अधिकतर बड़े शहरों और कस्बों में ही होने के कारण, ग्रामीण जनता को सर्वथा अनदेखा करती थी। आधुनिक चिकित्सा व्यवस्था, आयुर्वेद और यूनानी प्रणालियों और उन पारंपरिक वैद्य-हकीमों को निम्न स्तरीय मानती रही, जो छोटे शहरों और गांवों में ज्यादा प्रचिलित है, जहाँ आधुनिक दवाएं ज्यादा पहुंच नही पाई। स्वतंत्रता के सूर्योदय पर, भोरे समिति की ग्रामीण और शहरी असंतुलन को सुधारने और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार, तथा उन तक सामान्य पहुंच बनाने की एक एकीकृत योजना की सिफारिश की गई। इसके बावजूद स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी जन स्वास्थ्य सेवाओं की कमजोरी ग्रामीण क्षेत्रों में बनी रही, और निजी प्रेक्टिस का विस्तार होता रहा। जन स्वास्थ्य, पंचवर्षीय योजनाओं में निम्न वरीयता का विषय बना रहा और जन स्वास्थ्य प्रयास विशेष केन्द्रीकृत कार्यक्रमों तक सीमित रहे, जिसका कि परिवार नियोजन कार्यक्रम प्रमुख उदाहरण रहा। इससे जनता के स्वास्थ्य को १९५० से १९७० तक धीमा और अपर्याप्त लाभ मिला। यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि १९८३ तक भारत में कोई औपचारिक स्वास्थ्य नीति ही नहीं थी, योजना आयोग तथा समय समय पर नियुक्त विभिन्न समितियों ने ही स्वास्थ्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन को थोड़ी-बहुत दिशा प्रदान की।

इस असंतोषजनक स्थिति को १९८३ की राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में स्वीकार किया गया, तथा इसने पश्चिमी आधार वाली, उपचार-केंद्रित, शहरी आधार की स्वास्थ्य सेवाओं की आलोचना करते हुए प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं पर बल दिया। इसमें रोक-थाम करने वाली सेवाओं की सिफारिश थी और स्वास्थ्य सेवाओं के विकेन्द्रीकरण के साथ कम खर्च, बाजारवाद को हटाना, स्वयंसेवकों और ग्रामीण स्वास्थ्यकर्मियों की जरुरत और सामाजिक भागीदारी पर बल दिया गया था। यद्यपि १९८० के बाद से महत्त्वपूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं के रचनात्मक ढांचे का विस्तार हुआ, यह कम उपयोग का रहा क्योंकि इसमें चिकित्सा कर्मियों की कम उपस्थिति, दवाओं की अपर्याप्त पूर्ति, काम के घंटों की कमी, सामाजिक भागीदारी का अभाव तथा उपयुक्त पर्यवेक्षण और नियंत्रण का अभाव था। प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा की अवधारणा को कभी पूरी तरह क्रियान्वित ही नहीं किया गया, और कुछ चुने हुए केन्द्रीय कार्यक्रमों को विस्तृत स्वास्थ्य व्यवस्था के विकास के स्थान पर आगे बढ़ाया गया।

यह पहले से ही असंतोषजनक स्थिति, १९९० के बाद के वैश्वीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की नीतियों के लागू हो जाने से और भी गंभीर रूप से बदतर हुई। जन स्वास्थ्य की इस ऊपर से नीचे तक की अपर्याप्त स्थिति में, १९९० से नई उदारीकरण की नीतियों की वजह से वास्तव में 'सभी के लिए स्वास्थ्य' के मूल उद्देश्यों से पीछे हटने की स्थिति बन गई। विश्व बैंक जैसी संस्थाओं के सुझाव व मार्गदर्शन प्राप्त कर, जन स्वास्थ्य सेवांए निजी चिकित्सा क्षेत्र के दायरे में जाने व निजी सेवाओं के अनियंत्रित विस्तार के कारण और भी संकुचित हो गईं। जन स्वास्थ्य सुविधाओं के लिए विभिन्न स्तरों पर उपभोक्ता शुल्क वसूल किया जाना भी १९९० के दशक से ही प्रारंभ हुआ है।

सन् २००२ में एक नई स्वास्थ्य नीति घोषित की गई, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि जन स्वास्थ्य व्यवस्था अनेक स्तरों पर बिल्कुल कमजोर है और इसके लिए सामान्यतः अपर्याप्त संसाधन प्रदान किए जाते हैं। इस नीति में लक्ष्य बतलाये गए कि "वर्तमान में २० प्रतिशत से भी कम लोग स्वास्थ्य सुविधाओं का प्रयोग करते है; इसे बढ़ाकर ७५ प्रतिशत किया जाएगा,"। परंतु कोई भी महत्वपूर्ण कदम इस कमजोर जन

स्वास्थ्य व्यवस्था के पुनरूत्थान व सुदृढ़िकरण के लिए नही लिये गए। वास्तव में २००२ की नई स्वास्थ्य नीति एक असंबंधित घोषणाओं का संकलन था, तथा जन स्वास्थ्य सेवाओं की जिम्मेदारी को कम करने और चिकित्सा के निजी क्षेत्र का बढ़ावा देने एवं 'चिकित्सक पर्यटन' को विकसित करने का प्रयास ही था।

इस प्रकार निजीकरण और उदारीकरण की प्रक्रिया ने, तीव्र स्वास्थ्य असमानताओं, संक्रामक रोगों का पुनरोत्थान, तथा स्वास्थ्य सेवाओं की बढ़ती कीमतों के साथ अनियंत्रित दवा उद्योग द्वारा वर्तमान जन स्वास्थ्य की समस्याओं को बढ़ाया है। सार्वजनिक पहुंच के लक्ष्य से पीछे हटने के साथ, विशेष स्वास्थ्य आवश्यकताओं वाले स्त्रियों, बच्चों और समाज के अन्य वर्गो को और भी अनदेखा कर दिया गया है, अथवा उनकी आवश्यकताओं की अपर्याप्त पूर्ति ही हो पाती है। इस स्थिति से निपटने के लिए एक काफी वर्षो बाद आया कार्यक्रम, जो अपने विरोधाभासों से परिपूर्ण था, एन.आर.एच.एम के नाम से सन् २००५ में लागू किया गया। इस पर नीचे अलग भाग में विवेचन किया जा रहा है।

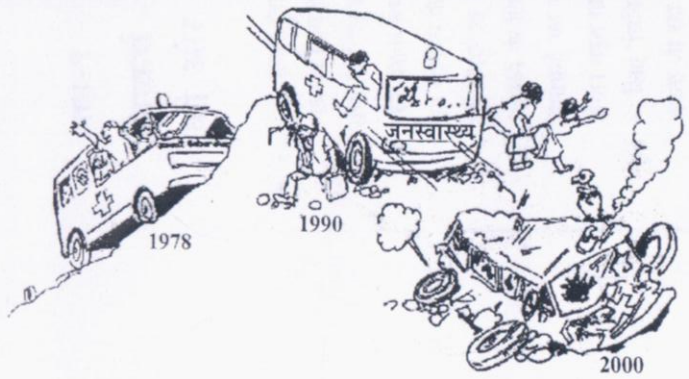

संक्षेप में अच्छे स्तर की, सभी के लिए समुचित स्वास्थ्य सेवा का उद्देश्य जो कि लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व स्वतंत्रता के उदय के साथ ही निर्धारित किया गया था, आज भी अनुपलब्ध पड़ा है। जन स्वास्थ्य, भारत में वित्तीय और राजनीतिक पटल पर निम्न क्रम का विषय रहा है। फलस्वरूप नीतिगत घोषणा (जैसे अल्मा अता घोषणा) और लागू करने में बहुत बड़ा अन्तर रहा है। हम देखते हैं कि निजी चिकित्सा क्षेत्र में अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है, जो कि जनसंख्या के एक बड़े भाग की वहन क्षमता में नहीं है और उस पर कोई नियंत्रण और मानदण्ड नहीं हैं।

जो बात इस स्थिति को और भी जटिल बनाती है, वह है स्वास्थ्य सेवा का 'तकनीकी प्रबंधन' मॉडल जो पश्चिमी देशों से प्रेरित है। इसके साथ ही स्वदेशी मॉडल तैयार करने, अथवा देशी और आधुनिक मॉडलों का सम्यक संतुलन कर उपयुक्त तकनीक द्वारा उपचार की प्रणाली विकसित करने की जरुरत को अनदेखा किया गया है। (जब कि चीन में यह किया गया है।) स्वास्थ्य योजना और निर्णय लेने का काम बहुत कम जवाबदेही के साथ उच्च स्तर पर केन्द्रित रहा है, जिसमें विकेन्द्रित योजना निर्माण और सामाजिक भागीदारी कम से कम रही है। इसका एक उदाहरण विभिन्न संक्रामक बीमारियों के नियंत्रण कार्यक्रम हैं, जिस पर एक अन्य भाग में विचार किया गया है।